Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Volume-3, Issue-12, Jan-2014

Available online at www. isrj.net

हिंदी साहित्य में नारीवादी लेखन की परम्परा

पारखे शंकर शंकर

शोध छात्र, जे.जे.टी. युनिव्हर्सिटी ,झुनझुनू, राजस्थान

सारांश : संसार में प्रायः सर्वत्र लिंगसापेक्ष विषमता पर आधारित पुरुष प्रधान संस्कृति है। इस पुरुष प्रधान संस्कृति तथा समाज रचना में अप्रत्यक्ष रुप से पुरुष वर्ग के हितों की रक्षा की जाती है जिससे यह व्यवस्था पुरुष वर्ग के लिए हितकारी तथा नारी वर्ग के लिए अहितकारी साबित हो रही है। इस कारण होने वाले अपने नारीत्वहरण तथा शोषण का एहसास प्रत्येक काल में नारी को कम अधिक मात्रा में होता है। किंतु आधुनिक युग में यह एहसास कुछ अधिक तीव्रता से होने लगा है। इस कारण वह पुरुष प्रधान संस्कृति के विरुध्द विद्रोह कर उठी है। और उस एहसास की अभिव्यक्ति अपनी कृति वाणी तथा लेखन के माध्यम से कर रही है। नारी साहित्य तथा नारीवादी का संबंध इस लेखन से है।

प्रस्तावना :-

नारी साहित्य नारी द्वारा रचित वह साहित्य है जो उसके अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है ये ऐसी अनुभूतियाँ हैं, जो अभी तक दबी हुई थी। प्रभुत्वशाली पुरुषवादी समूह ने नारी को अब तक समाज एवं साहित्य से बहिष्कृत रखा था। नारी को मर्यादित क्षेत्रों तक ही कार्य करने की अनुमति दी गई थी, उससे बाहर झाँकना उसे मना था। जैसे ही नारी ने इन प्रतिबंधित क्षेत्रों से बाहर निकलने की कोशिश की, पुरुषसत्ता को इससे खतरे का एहसास हुआ। ऐसी अवस्था में पुरुष ने नारी को देखभाल, भरण-पोषण के बहाने फिर एक सीमा में बाँध दिया। इसकी परिणति यह हुई कि नारी खंडित हुई, उसकी उपेक्षा हुई, नारी सभ्यता अधुरी नजर आने लगी। पुरुषवर्ग द्वारा निर्मित साहित्य में भी नारी का जो रुप उभरा वह परंपरागत था। पुरुष लेखकों ने प्राचीन काल से नारी के बारे में मिथकों की रचना कर उसे संघर्षशील चित्रित किया किंतु उसमें बनावटीपन ही अधिक है। पुरुषों ने अपने साहित्य में नारी चरित्रों में जिन मूल्यों एवं तत्वों के दर्शन कराए हैं, वहाँ समानता के लिए नारी का संघर्ष भूल-सा प्रतीत होता है। तब यह आवश्यक हो गया कि नारी बात स्वयं कहे। अतः नारी साहित्य नारी द्वारा ही लिखित होगा।

नारीवादी साहित्य की अवधारणा नारी साहित्य से भिन्न है। नारीवाद वास्तव में एक समाजशास्त्रीय संकल्पना है। किंतु साहित्य के नजरिए से विचार करें तो पुरुषप्रधान संस्कृति से विमुक्त होकर नर से पीड़ित नारी का आक्रोश, संघर्ष, व्यथा संवेदना, तनाव, औरत के प्रति होने वाले अपमान प्रस्तुत करना नारीवादी साहित्य का लक्ष्य है। नारीवादी साहित्य नारी पक्ष की वकालत करते हुए पुरुषप्रधान समाज के विद्रुप, भयावह चेहरे का नक़ाब उतारता है। यह साहित्य स्त्री और पुरुष दोनों का हो सकता है।

नारी साहित्य तथा नारीवादी साहित्य के समान इस साहित्य का मूल्यांकन समीक्षा भी एक पेचीदा सवाल है। इस साहित्य को साहित्य की परंपरागत धारणाओं एवं मानदंडो के तहत विश्लेषित करना असंभव है। क्योंकि साहित्य का मुल लक्ष्य सामाजिकता एवं मूल्यों को अभिव्यक्त करना है। और इसी आधार को समीक्षा ने मूल्यों की खोज का प्रमुख सरोकार माना है। किंतु इसके विपरीत नारी साहित्य एवं नारीवादी साहित्य नारी की अस्मिता एवं अनुभवों को सर्वाधिक महत्त्व देता है। साहित्य की मुख्य धारा ने स्त्री की अस्मिता, आकांक्षाओं, इच्छिओ, जरुरतों, अनुभवों एवं

मनः स्थिति की कुल मिलाकर उपेक्षा ही की। ऐसी स्थिति में इस साहित्य की समीक्षा के लिए नये मानदंड की खोज आवश्यक हो जाती है।

एलेन शोवाल्टर नारी साहित्य की समीक्षा के संदर्भ में प्रमुख नाम है। उन्होनें 'क्रिटिकल इनक्वायरी' पत्रिका में फेमिनिस्ट क्रिटिसिस्म इन द विन्डरनेस शीर्षक से लिखे लेख में नारीवादी साहित्य के मूल्यांकन के लिए दो प्रणालियाँ प्रस्तुत की है। उसमे एक को वह (Gynocriticism)
अर्थात नारीनिष्ठ साहित्य समीक्षा नाम देती है। इस प्रणाली द्वारा किसी कृति की समीक्षा करते समय उसमें स्त्री निर्मित साहित्य का इतिहास, साहित्य की शैली, विविध मार्मिक स्थल, साहित्य विधा, रचना प्रक्रिया आदि का अध्ययन किया जाता है। साथ ही उसमें लेखिका व्यक्तित्व, उसकी नारी सुलभ सर्जनात्मकता की मानसिकता आदि का भी सुनियोजित ढंग से अध्ययन किया जाता है। इसमें सबसे पहले लेखिका की नारी विशेषता उसके किस-किस गुण विशेष में समाहित है इसकी छान-बीन की जाती है। लिंगभेद से प्राप्त नारी विशेषता ऐसे साहित्य में आसानी से प्राप्त होती है। क्योंकि नारी का अपने शरीर, मन, भाषा तथा स्त्री संस्कृति के साथ भी विशिष्ट संबंध होता है। इन संबंधों से स्त्री का अपना स्त्री विशेष अनुभवविश्व साकार होता जाता है। उदा. रजस्व स्थिति, गर्भधारणा, दूसरे जीव को अपने शरीर में बढ़ाना, अपत्यजन्म आदि अनुभवों से स्त्री का शरीर-मन रूपांतरित, उत्क्रमित होता जाता है। ये शारीरिक तथा मानसिक अनुभव स्त्री के अपने अनुभव होते है। ये अनुभव पुरुष अनुभव की कक्षा से बाहर है। इस नारी विशेष अनुभव क्षेत्र को शोवॉल्टर ने 'वाईल्ड झोन' से संबोधित किया है। ये 'वाईल्ड झोन' पुरुष साहित्यिकों से अनछुए हैं। अतः स्त्री विशिष्टता का स्वरूप जानना हो तो नारी शरीर, नारी मन, नारी भाषा, नारी संस्कृति इन चार पहलुओं से नारी साहित्य और साहित्यकार का अध्ययन करना शोवॉल्टर की दृष्टि से आवश्यक है। ऐसी समीक्षा तथा अध्ययन करते समय जीवशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक ज्ञान दृष्टी का आवश्यकता के अनुसार उपयोग किया जा सकता है।

दूसरे प्रकार की नारीवादी समीक्षा को शोवॉल्टर Feminist Reading अर्थात नारीवादी पठन कहती है। यह समीक्षा नारी को उसके दृष्टिकोन से समझने तथा उसे न्याय देनेवाले साहित्य के पठनपर बल देती है। साहित्य का यह वाचन नारी लक्ष्मी या नारी केंदी होता है। यह समीक्षा नारीवादी पाठकों पर ही निर्भर करती है। क्योंकि पुरुषनिर्मित साहित्य में प्रायः विषमता पर आधारित पुरुषवादी संस्कृति के मूल्य दृष्टि से नारी जीवन का चित्रण किया जाता है। इसीकरण पुरुष साहित्यकार प्रायः नारी शरीर, नारी मन, नारी भाषा तथा नारी संस्कृति आदि से संबंधित नारी विशेषता को न समझते हुए भी नारी को अपने साहित्य में चित्रित करते रहते है। जिससे इस साहित्य में कई बार नारी का विकृत या अज्ञानमूलक चित्रण किया जाता है। कई बार लेखिकाएँ भी पुरुषप्रधान संस्कृति के दृष्टिकोण से ही नारी जीवन को चित्रित करती है। इस कारण भी नारी पर अन्याय होता है। ऐसे साहित्य में नारी को अबला, सहिष्णु, पति के चरणओं की दासी, उपभोग्य वस्तु, देवता, क्षणिक पत्नी, अनंतकालीन माता आदि सांस्कृतिक गुणविशेष चिपकाते हुए ऐसा दर्शाया जाता है कि ये सारे गुणविशेष नारी को जन्मतः (Biological) प्राप्त होते है। ऐसे साहित्य का, उसमें चित्रित नारी प्रतिमा का पठन या समीक्षा करते समय नारीवादी पाठक या समीक्षक को अपनी न्यायबुद्धि जागृत रखनी पड़ती है। जिससे विषमता के मूल्यों पर आधारित पुरुषप्रधान संस्कृति नारी का लिंग, वंश, वर्ण, वर्ग आदि के द्वारा शोषण करती हुई किस प्रकार उसके नारीत्व एवं स्वत्व का गला घोंट देती है, इसकी निष्पक्ष चिकित्सा एवं मूल्यांकन यह समीक्षा प्रणाली करती है। इसी कारण यह समीक्षा प्रणाली स्त्रीलक्ष्मी तथा स्त्रीवादी पठन पर अधिक बल देती है।

भारतीय संदर्भ में नारीवादी आंदोलन पश्चिम की देन अवश्य है किंतु प्रत्येक समाज एवं देश की अपनी विशेषताएँ होती है। पश्चिमी नारी ने अपनी लड़ाई खुद लड़ी है। अपने अधिकारों के लिए, पुरुषों के खिलाफ आवाज उठाई है और अपने प्रयासों से सामाजिक, राजनीतक तथा वैयक्तिक अधिकार प्राप्त किए हैं। किंतु भारत में आधुनिक युग में नारी की व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्थिति के लिए आवाज उठानेवाले आंदोलनकर्ता पुरुष ही थे। भारतीय स्त्रियों ने पुरुषों के विरोध में जाकर कभी अपने अधिकारों की माँग नही की। बल्कि उनके मुक्ति संघर्ष में पुरुषों ने उनका मार्गदर्शन करने के साथ उनके सहयोगी बनना स्वीकार किया। किन्तु यह आधुनिक काल की ही बात है।

Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Volume-3, Issue-12, Jan-2014
Available online at www. isrj.net

भारत में स्त्रियाँ प्राचीन काल से लेकर साहित्य के जरिए अपनी अस्मिता को ढूँढने का काम करती रही है। यह बात और है कि साहित्य के इतिहास में उनकी उपस्थिति न के बराबर ही मानी गई है।

अन्य साहित्य की भाँति स्त्री साहित्य का आरंभ कविता से हुआ। सन १३८८ से सन १५४५ तक के युग को स्त्री काव्य के आदिकाल के रूप में जाना जाता है। इस युग मे सामंती व्यवस्था ऱ्हास की ओर जा रही थी। सामाजिक आर्थिक तौर पर स्त्री की अधिकारविहीन स्थिति ने उसे ज्यादा से ज्यादा पुरुष की निर्भरता पर जीने के लिए मजबूर किया। बाल विवाह, बहुविवाह एवं परदे की प्रथा के कारण वह गुलामी की अवस्था में धकेल दी गई। इस युग में ही स्त्री को भोग की सामग्री के रूप में शरीर को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा। वह तो विलास की सामग्री थी या फिर दासी या नौकरानी। उसे सिर ऊँचा करके जीने का अधिकार नहीं था। पर यह बड़ी दौर है जब देशज भाषा में स्त्री साहित्य का उदय होता है। सामंती व्यवस्था ने जहाँ स्त्री को चहारदीवारी में कैद करने की तैयारियाँ मुकम्मल कीं वहीं दूसरी ओर स्त्रियों की ओर से प्रतिरोध सुनाई पड़ता है। स्त्रियों का लिखना स्वयं में पितृसत्ता का निषेध है, उसका अस्वीकार है।

हिंदी की पहली कवयित्री के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान मीरा को पहली लेखिका मानते है। पर मीरा से भी पहले उमा एवं पार्वती नाम की दोन कवयित्रियों की कविताएँ मिलती है। ये दोनों निर्गुणमार्गी कवयित्रियाँ है। इसी परंपरा में आगे चलकर संत ज्ञानेश्वर की बहन मुक्ताबाई का नाम आता है। चौथी कवयित्री के रूप में सीमा चारणी का नाम आता है। जिन्होंने वीरगाथात्मक रचनाएँ लिखीं। इस दौर की सबसे महत्त्वपूर्ण कवयित्री मीरा है। उनके काव्य में अपूर्व भाव विह्वलता और आत्मसमर्पण का भाव है। मीरा अभिजन वर्ग की थी, इसी की वजह से इस वर्ग की आंतरिक जिंदगी से बखूबी वाकिफ थी। अभिजन वर्ग के प्रति उनमें जबरदस्त घृणा का भाव था। भक्ति और माधुर्य तत्व के माध्यम से मीरा ने लिंगीय भेदभाव और सामाजिक वैषम्य दोनों को एक साथ चुनौती दी। स्त्री के सामाजिक अधिकारों, खासकर स्त्री के मन और तन पर स्त्री के स्वामित्व की वकालत करने वाली वह पहली भारतीय लेखिका है। इस अर्थ में वह स्त्रीवादी भी है।

इसी काव्यधारा के चरण में गंगाबाई, रत्नावली, शेख रंगरेजन, सुंदरकली, इंद्रामती, शिवरानी चौबे, दयाबाई सहजोबाई, आदि के नाम उल्लेखनिय है। पहले चरण की लेखिकाओं ने स्त्री काव्य के जिस परंपरा की, नींव डाली उसी पर दुसरे चरण की लेखिकाओं ने विषमता व सामाजिक यथार्थ द्वंद्व प्रस्तुत किया। भारतीय समाज में स्त्री की अस्मिता और अधिकारों का जाती व्यवस्था से सीधा संबंध है। सामाजिक पराधीनता एवं स्त्री अधिकारों के हनन में जाति व्यवस्था प्रधान कारण है। अतः इस चरण में जातिप्रथा के खिलाफ संघर्ष प्रधान विषय था। किन्तु जाति व्यवस्था को नैतिकता के धरातल पर चुनौती दि गई जबकि जाति प्रथा नैतिक प्रथा नहीं थी बल्कि उसका आधार आर्थिक था। इसी समाज एवं अर्थव्यवस्था की पुरी नींव खडी थी। जातिप्रथा के आर्थिक आधार को तोडे बगैर जाति प्रथा का उन्मूलन संभव नहीं था। किन्तु इस संघर्ष का एक लाभ यह हुआ कि, कविता के क्षेत्र में तुलनात्मक तौर पर स्त्री को ज्यादा स्वाधीनता मिली। समाज में उसके प्यार पर पाबंदी थी, किन्तु सामाजिक जीवन में समानता का एकदम अभाव था। अतः यह लेखिकाएँ सामाजिक बंधनों एवं भेदभाव का विरोध करती है। इस चरण की अधिकांश कवयित्रीयों ने कृष्ण भक्ति के बहाने पुरुष वर्चस्व को चुनौती दी है। साथ ही कृष्ण के बहाने आदर्श पुरुष की छवि निर्मित करती हैं। इनके कृष्ण प्रेम करना जानते है। किसी का वध नहीं करते।

आधुनिक काल में गद्य का अविर्भाव और अभिव्यक्ति के लिए एक और माध्यम उपलब्ध हुआ। कविता धारा अपनी दिशा में बहती रही किन्तु गद्य के माध्यम से स्त्रियों ने अपना संघर्ष जारी रखा। हिंदी कहानी हों या हिंदी उपन्यास। दोनों विधाओं में लेखिकाओं की बराबर की साझेदारी है। इस युग के प्रथम चरण के कथा साहित्य में बंगमहिला अर्थात राजेंद्रबाला घोष, यशोदा देवी, प्रियंवदा देवी, शारदाकुमारी देवी, साध्वी पतिप्राणा अबला, सरस्वती गुप्ता, हेमंत कुमारी चौधरी, ब्रम्हकुमारी दुबे, रुक्मिणी देवी, हुक्मदेवी गुप्ता, लीलावती देवी, विमला देवी चौधरानी, राजरानी देवी, जनकदुलारी देवी, श्रीमती मनोरमा देवी, चंद्रप्रभा देवी मेहरोत्रा, शिवरानी देवी आदि के नाम उल्लेखनिय हैं। इस दौर की स्त्री कहानियों में स्त्री की घरेलु जिंदगी, पतिनिष्ठा आदि विषयों का निरूपण जिस दृष्टिकोन से हुआ है, उससे सहमत न होते हुए भी यह बात कही जा सकती है कि लेखिकोओं ने ही सर्वप्रथम घरेलु जीवन को कथा का विषय बनाया। ये सभी लेखिकाएँ घरेलु औरतें थीं और घरेलु होने के कारण उनकी पहली

समस्या थी- घरेलू स्त्री की अस्मिता को स्थापित करना या परिभाषित करना। इस युग के उपन्यासों के केंद्र में स्त्री की गरिमा, मान मर्यादा और अस्मिता के प्रश्न है। प्राचीन मर्यादाओं और रिवाजों को बरकरार रखकर स्त्री की अस्मिता को उभारने का प्रयास इनमें दिखाई देता है।

हिंदी महिला कथाकारों की अपनी परंपरा में उषादेवी मित्रा, सत्यवती मलिक, होमवती देवी, चंद्रवती ऋषभचरण जैन, कमला चौधरी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि सितारे उभरे। इन सभी ने नारी को केंद्र में रखकर रचनाएँ की हैं। उनके नारी पात्र समयानुसार परिवर्तित प्रतीत होते हैं जो अन्याय एक सीमा तक ही सह पाते हैं। अति होने पर विरोध करने में हिचकिचाते नही। इनके कथासाहित्य में अंतर्जातीय विवाह, वेश्याओं की समस्याओं, परित्यक्ता नारी की समस्याओं, वर्णव्यवस्था के स्त्री जाति पर पडनेवाले प्रभावों आदि को स्वर देने का प्रयास हुआ है। इस युग की अधिकांश लेखिकाओं के साहित्य में पुरुषवादी नजरिए के प्रति मूक विद्रोह नजर आता है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में स्त्री साहित्य अपने पूरे निखार पर नजर आता है। इसमें नारी का अपनी मुक्ति के प्रति कडा संघर्ष दिखाई देता है। जीवन के गंभीर से गंभीर विषयों को इस दौर की लेखिकाओं ने सहजता एवं सामान्य रूप में उठाया है। इस युग की सशक्त लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, शिवानी, ममता कालिया, नमिता सिंह, मृणाल पांडे, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, सिम्मी हर्षिता, कुसुम अंसल, सुर्यबाला, पुष्पा सक्सेना, नासिरा शर्मा, मैत्रेय पुष्पा, गीतांजली श्री, शशिप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, मणिका मोडिनी, मीरा सीकरी, सुधा अरोडा, अलका सरावगी, क्षमा शर्मा, कंचनलता सब्बरवाल, उषा मंडाजन, शांता सक्सेना, हीरावती चतुर्वेदी, हेमलता पंत, शिवोला रानी माथुर, चंद्रप्रभा द्विवेदी, सावित्री निगम, नीता परांजपे, जयदेवी पांडेय, कुसुमलता वर्मा, देवयानी, रमणिका गुप्ता, रमा सिंह, रागिनी मालवीय, सारा राय, कविता पांडेय, संजना कौल, ऋता शुक्ला, सरयू शर्मा, कनकलता, प्रभा दिक्षित, उषा किरण खान, अर्चना वर्मा, रेखा, राज्यश्री पांडे, सुमति अय्यर, इंदिरा राय, पुष्पा सिंह, कमला चमोला, चंद्रकांता, प्रेमिला, विभारनी, शांता सिन्हा, आभा गुप्ता, आभा दयाल, अलका पाठक, जया जादवानी, सुरभि पांडेय, वंदना प्रसाद, लक्ष्मी कण्णन, संतोष गोयल, अल्पना लवलीन, प्रतिभा, निर्मला भुराडिया, ज्योत्स्ना मिलन, मुक्ता, मंजू सक्सेना, प्रमिला ओबेराय, निलिमा सिन्हा, तेजी ग्रोवर, मीनाक्षी पुरी, कल्पना सिंह, सरिता सूद आदि का विशेष योगदान रहा है। इन लेखिकाओं मे अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बडी गहराई से उकेरा है। ये लेखिकाएँ पुरुष लेखकों की भाँति न नारी की महिमा है न उन्हें नकली रूप में प्रस्तुत करके पीडित करती है, ये एक विशेष दायरे की नारी की पहचान समस्त परिणतियों के साथ उभारती है। यह विशेष दायरा है पढ़ी-लिखी मध्यमवर्गीय नारियों का दायरा। किन्तु लेखन यहीं तक सीमित नहीं है। नारी ने नारी की मनःस्थिती को जिस विशिष्टता से पहचाना है और जिस सुघडता से उसको अभिव्यक्ति दे रही है। वह बडी महत्त्वपुर्ण बात है।

अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि जब नारी साहित्य की इतनी महिमा गाई जाती है तो आज तक हिंदी साहित्य में ऐसी कितनी महिला लेखिकाओं की कृतियाँ है, जिन पर हिंदी साहित्य गर्व कर सके। कितनी लेखिकाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से अमर पात्रों का निर्माण किया है। क्यों पुरुष साहित्यकारों की तुलना में स्त्रियों का साहित्य अपना वजुद स्थापित नहीं कर पा रहा है। इन सभी प्रश्नों के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि नारी साहित्य की समीक्षा उन्हीं परंपरागत मानदंडो के आधार पर की जाती रही है जो पुरुषवादी समाज ने अपने हित के लिए निर्धारित किए थे। पुरुषवादी समाज के नजरिए से एक नारी पात्र में जो गुण होने चाहिए, वे मिलते है तो वह आदर्श है। चाहे इस आदर्श के लिए उसे कितनी ही बडी कुर्बानी क्यों न देनी पडे। दुसरी बात नारी साहित्य को पहले से ही दुय्यम दर्जा दिया जाता रहा है। जब शुरु से ही आलोचकों का स्त्री साहित्य के प्रति देखने का नजरिया दूषित हो तो उनसे निष्पक्ष आलोचना की उम्मीद कैसे की जा सकती है?